श्रीगोपालनारायण बहुरा

जैनवाङ्मय के योरपीय संशोधक

योरपनिवासी विद्वानों द्वारा जैन-साहित्य में संशोधन होते प्रायः डेढ सौ वर्षों से भी अधिक समय हो चुका है. बुशनैन (Buchnan) ने मैसूर, कन्नड और मलाबार होते हुए मद्रास में अपने दौरे का वृत्तान्त १८०७ ई० में प्रकाशित कराया था, जिसमें उसने जगह-जगह जैनों का उल्लेख किया है. उसने १८११-१२ ई० में पटना और गया जिलों का भी सर्वेक्षण किया और उसके बारे में भी अपने संस्मरण लिखता रहा. व्ही० एच० जैक्सन द्वारा सम्पादित १९२५ ई० में पटना से प्रकाशित उक्त वृतान्त में लिखा है कि उसने महावीर के निर्वाणस्थल[1] की भी यात्रा की थी. इसी प्रकार १८०७ ई० में ही "एशियाटिक रिसर्चेज" के नवें अंक में "जैन वृत्तान्त" (Account of the Jains) के शीर्षक से तीन विवरण प्रकाशित हुए थे, जिनमें उक्त बुशनैन के अतिरिक्त लेफ्टिनण्ट कर्नल मैकेन्जी द्वारा अपनी १७९७ ई० की दैनन्दिनी के आधार पर संगृहीत वृत्तान्त थे. बुशनैन के लेख किसी जैन विद्वान् की टिप्पणियों पर भी आधारित थे और बहुत कुछ कल्पनाधारित एवं अशुद्ध भी थे. जैसे, उसने लिखा है कि बुंदेली, मेवाड़, मारवाड़, कुण्डेर, लाहौर, बीकानेर, जोधपुर आदि स्थानों के बहुत से राजपूत जैन थे. जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंह, सवाई जयसिंह का पुत्र था और उससे पूर्व के सभी राजा जैन थे. वास्तव में, न सवाई प्रतापसिंह सवाई जयसिंह का पुत्र था, न जयपुर का कोई राजा जैन धर्मावलम्बी हुआ. यह अवश्य है कि कितने ही राजाओं ने जैनों को प्रश्रय दिया था. इसके बाद ही कोलब्रुक (१७६५-१८३७ ई० सन्) के विविध लेखों में संगृहीत "जैनमत पर विचार-विमर्श"—परक निबन्ध प्रकट हुए.[2] ये निबन्ध केवल विवरणात्मक न होकर पूर्वोक्त संशोधनों एवं स्वयं कोलब्रुक की संशोधनात्मक आलोचना पर आधारित थे.

परन्तु, यह नहीं मान लेना चाहिए कि वैदेशिकों द्वारा उपरिलिखित उल्लेख ही सर्वप्रथम उल्लेख हैं. ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हेसिचिओस (Hesychios) नामक ग्रीक कोशकार ने "जेनोई" (Genoi) शब्द का प्रयोग नग्न-दार्शनिकों के अर्थ में किया है. बाद के विद्वानों ने इस "जेनोई" शब्द को जैनों से सम्बद्ध माना है.

कर्नल मैकेन्जी के संग्रह का विलसन द्वारा संकलित सविवरण सूची-पत्र सर्व-प्रथम १८२८ ई० में प्रकाशित हुआ था, उसमें श्रावकों अथवा जैनों पर डेलामेन (Delamain) और बुशनैन के निबन्धों का सन्दर्भ अवश्य है तथा बाद में

---

१. पोयपुरी (Pauyapury) के पास पोकोरपुर (Pokorpur) में महावीर का मंदिर है. मरण के अनन्तर उनके कुछ अवशेष वहीं पर रहे. बाद में वहाँ पर मंदिर का निर्माण कराया गया.

२. Journal of Francis Buchnan, Ed. V. H. Jackson, 1925, PP. 102-103.
Observations on the Sect of Jainas. Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, Vol. I.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलिन व कोलब्रुक द्वारा जैन-मंदिरों के शिलालेखों पर भी अध्ययनात्मक विवरण प्रकाशित हुए हैं, परन्तु सबसे पहली पुस्तक जिसके टाइटल पर "जैन" शब्द अंकित हुआ है वह फ्रेंकलिन लिखित "जैन और बौद्धवादों का संशोधन" (Researches on the Tenets of the Jeynes & Boodhists) है जो १८२७ ई० में सामने आई. विलसन ने अपने सविवरण सूची-पत्र में बहुत-सी जैन-पाण्डुलिपियों का विवरण दिया है, जिनमें से कुछ उसकी निजी थीं और कुछ कलकत्ता संस्कृत कालेज की थीं. १८२८ ई० में प्रकाशित मैकेन्जी संग्रह के कैटलाग में उसने उन ४४ हस्तलिखित ग्रन्थों का भी विवरण दिया है, जो लन्दन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी में पहुँच चुके थे.

कोलब्रुक ने आचार्य हेमचन्द्र कृत 'अभिधानचिन्तामणि' और 'कल्पसूत्रादि' विषयक निबन्ध तो लिखे परन्तु इनके सुसम्पादित संस्करण उस समय न निकल सके और बाद में भी बीस वर्ष तक कोई मूलपाठ का संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ. अन्त में, सैंटपीटर्सबर्ग से 'अभिधानचिन्तामणि' का भूतलिग (Bohtlingk) और रीउ (Rieu) कृत जर्मन अनुवाद १८४७ ई० में प्रकाशित हुआ तथा कल्पसूत्र एवं नवतत्त्व प्रकरण का अंग्रेजी अनुवाद स्टीवेंसन द्वारा १८४८ ई० में प्रकाश में आया. प्राकृत आगम का अंग्रेजी में अनुवाद करने वाला स्टीवेन्सन ही प्रथम विद्वान् था. बाद में वेबर (Weber) (१८२५-१९०१ ई० सन्) ने धनेश्वर सूरि कृत 'शत्रुञ्जय-माहात्म्य' का सम्पादन करके विस्तृत भूमिका सहित लिपज़िग (Leipzig) से सन् १८५८ ई० में प्रकाशित कराया. इस विद्वान् का जैन-शास्त्रों के अध्ययन के परिणामस्वरूप यह प्रथम प्रयास था...परन्तु आगे चलकर 'भगवतीसूत्र' पर जो कार्य वेबर ने किया वह चिर-स्मरणीय रहेगा. यह ग्रन्थ बर्लिन की विसेन्चाफेन (Wissenchaften) अकादमी से १८६६-६७ ई० में निकला था. अब तो यह प्रायः अप्राप्य हो गया है परन्तु जैन साहित्य के भाषा शास्त्रीय अध्ययन के क्षेत्र में एक युग-प्रवर्तक ग्रन्थ समझा जाता है. वेबर की 'जैनों का धार्मिक साहित्य' (Sacred Literature of the Jainas) का अंग्रेजी अनुवाद स्मिथ ने प्रकाशित किया था. विण्डिश (Windisch) ने अपने इण्डो-आर्यन रिसर्च के विश्वकोश (Encyclopedia of Indo-Aryan Research) में इसका सविस्तर विवरण दिया है. तदुपरान्त वेबर ने बर्लिन की रायल लाइब्रेरी में उपलब्ध जैन पाण्डुलिपियों का अध्ययन करके जिन मूलभूत सिद्धान्तों की स्थापना की है[1] वे जैन साहित्य और इतिहास के विवेचन में कभी भुलाए नहीं जा सकते. उक्त पुस्तकालय में बाद में १९४४ ई० तक जो जैन ग्रन्थ खरीदे गए उनका सूचीपत्र वाल्टर शुब्रिङ्ग् (Walther Schubring) ने तैयार किया है, जो लिपज़िग से प्रकाशित हुआ है. इसमें ११२७ ग्रन्थों का विवरण है.

बर्लिन में जो हस्तलिखित जैन ग्रन्थ पहुँचे हैं और जिनका विवरण वेबर ने अपने कॅटलाग में किया है उनका मुख्य माध्यम ब्युह्लर को मानना चाहिए. उस विद्वान् को बम्बई के शिक्षा-विभाग ने कुछ अन्य विद्वानों के साथ तत्तत् क्षेत्रों में दौरा करके निजी संग्रहों का विवरण तैयार करने तथा उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों को खरीदने के लिये तैनात किया था. ऐसे ग्रन्थों के विषय में भण्डारकर, ब्युह्लर (१८३७-९८ ई०), कीलहार्न, पीटर्सन और अन्य विद्वानों की रिपोर्ट समय-समय पर प्रकाशित हुई हैं तथा निरीक्षित-परीक्षित ग्रन्थों के विवरण एवं उनके विषय में आवश्यक जानकारी भी उन रिपोर्टों में दी गई है. इस प्रकार खरीदे हुए ग्रन्थ 'डेकन कालेज, पूना' में एकत्र किए गए थे, जो अब भाण्डारकर शोध संस्थान में सुरक्षित हैं. ब्यूह्लर ने सरकारी शिक्षा-विभाग से यह अनुमति प्राप्त कर ली थी कि जिन ग्रन्थों की एकाधिक प्रतियाँ मिलें उनको वह विदेशी पुस्तकालयों के लिए भी खरीद सकेगा. और, यही कारण है कि बर्लिन तक अनेक महत्त्वपूर्ण जैन-ग्रन्थ पहुँच सके तथा वहाँ के अध्यवसायी विद्वानों द्वारा सुसम्पादित होकर उनके बहु-प्रशंसित अद्वितीय संस्करण निकले, जो उनके भाषाशास्त्रीय अध्ययन के प्रति संसार के अग्रणी विद्वानों को आकर्षित करने में समर्थ हुए. यह भी मान लेने में संकोच नहीं करना चाहिए कि इस प्रकार के अध्ययनार्थ एतद्देशीय विद्वानों को मार्गदर्शन करने का श्रेय भी इन्हीं पाश्चात्य विद्वानों को है.

---

१. Indische Studien Vol. XVI. & XVII, 1888-92.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्यूह्लर और वेबर ने अपनी रिपोर्टों, निबन्धों और स्वतंत्र लेखों के द्वारा अनुवर्त्ती शोधविद्वानों को भी प्रोत्साहित किया. जैकोबी सम्पादित 'कल्पसूत्र' के समीक्षात्मक संस्करण में, जो सन् १८९७ ई० में प्रकाशित हुआ, ब्यूह्लर का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है. इसी प्रकार लिउमैन (Leumann १८५९-१९३१ ई० सन्) के 'औपपातिक सूत्र' (१८८३) पर वेबर की स्पष्ट छाप है. ये दोनों ही कृतियाँ प्राचीन भाषाशास्त्र की सर्वोत्तम निधियाँ हैं. जैकोबी (१८६०-१९३७ ई०) ने कल्पसूत्र की जो भूमिका लिखी है वह तो प्रायः अब तक हुए इस दिशा के अनुसंधानों की पृष्ठभूमि ही बन गई हैं. उसने जैन और बौद्धमतों की प्राचीनता के विषय में सभी सन्देहों को निरस्त कर दिया है और यह निर्णय स्थापित किया है कि जैनमत बौद्धमत से बहुत पुराना है. गौतम बुद्ध के समय से बहुत पहले ही जैन-मत का प्रादुर्भाव हो चुका था. वर्द्धमान महावीर जैनमत के आदि प्रवर्तक नहीं थे. वे तो पार्श्वनाथ के उपदेशों के परिष्कारक मात्र थे. उसने यह भी बताया है कि पार्श्वनाथ महावीर से दो सौ पचास वर्ष पूर्व हो चुके थे और महावीर का निर्वाणकाल ४७७ ई० पू० था. टोपरा के शिलालेख से विदित होता है कि अशोक महान् जैनों से 'निगण्ठ' नाम से परिचित था.

योरप में जैन संशोधन की प्रगति को देखते हुए पिशेल (Pischel) ने आशा व्यक्त की थी कि जैनशास्त्रों के मूलपाठों के सम्पादन एवं प्रकाशन के निमित्त एक जैन-ग्रन्थ पाठ-प्रकाशन समिति की स्थापना हो सकेगी, परन्तु उनका यह स्वप्न पूरा न हो सका. इतना अवश्य हुआ कि भारत के जैन-समाज में चेतना आ गई और आगमोदय समिति आदि अनेक संस्थाओं ने इस दिशा में कदम आगे बढ़ाया. अनेक जैन ग्रन्थों का सटिप्पण, सावचूरि एवं निर्युक्ति सहित प्रकाशन हुआ. इससे एक लाभ यह हुआ कि पहले जो मूल ग्रन्थ योरपीय विद्वानों के हाथ लगे थे वे बड़ी अस्तव्यस्त दशा में थे और वे उनके पाठ को ठीक-ठीक समझ नहीं पाते थे. विविध प्रतिलिपिकर्त्ताओं ने लम्बी प्रशस्तियाँ अथवा प्रचलित पाठ का संक्षिप्त रूप देकर उन्हें और भी दुर्गम्य बना दिया था. ऐसी प्रतियों में दिये हुए संकेतों को समझना जैन-विद्वानों की सहायता के विना संभव नहीं था. ब्यूह्लर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि बहुत-सा जैन साहित्य तलघरों में प्रच्छन्न अवस्था में पड़ा है जिसके विषय में स्वयं जैनों को अथवा उन भण्डारों के संरक्षकों तक को ठीक-ठीक पता नहीं है. जैसलमेर के बड़े भण्डार को देखने जब वह गये तो वहाँ ग्रन्थों की संख्या के विषय में कुछ का कुछ बता दिया गया. अस्तु—भारतीय जैन विद्वानों के आगे आने से योरपीय संशोधकों का भी मार्ग बहुत कुछ सरल हो गया और वे इसमें अधिकाधिक रस लेने लगे. इसके फलस्वरूप लिउमैन (Leumann) ने जैन-सिद्धान्तों का अध्ययन करके आवश्यक सूत्रों पर कार्य किया और जैन-कथाओं के विषय में भी अपने अभिमत प्रकट किए. हर्टेल (Hertel) ने कथाओं को लेकर, विशेषतः गुजरात में प्राप्त साहित्य के आधार पर, बहुत अध्ययन किया. उसने इन कथानकों के आधार पर भारतीयेतर साहित्य में भी समानान्तर आधार-कथाओं का अन्वेषण किया.[1] हर्टेल का कहना है कि जैन-कथाओं में संस्कृत भाषा का जो रूप प्रयुक्त हुआ है वह साधारण बोलचाल की भाषा थी, जिसमें प्राकृत अथवा प्रांतीय बोलियों के बहुत से शब्द स्वतः सम्मिलित हो गये हैं. यदि आज की भाषा में कहें तो उन पर आंचलिक छाप लगी हुई है, जो शास्त्रीय व्याकरण-सम्मत भाषा से भिन्न है. वैसे भी, प्राकृत शब्दों, संस्कारित प्राकृत लोकभाषादि के शब्दों, विविध व्याकरणों से लिए हुए शब्दों और अज्ञातमूलक शब्दों का संभार[2] जैन-संस्कृत की विशिष्टता मानी जाती है.

साहित्यिक और ऐतिहासिक अनुसंधान में ग्रन्थ-सूचियाँ बहुत काम की होती हैं. यदि इनको अनुसंधान-भित्ति की आधार-शिलाएँ भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी. इस दिशा में क्लाट (Klatt) ने पहल की थी. उसने जैन-ग्रंथकारों और ग्रंथों की इतनी बड़ी अनुक्रमणिका तैयार की थी कि वह प्रायः ११००-१२०० पृष्ठों में मुद्रित होती. परन्तु दैवदुर्विपाक से वह विद्वान् किसी गम्भीररोग के चक्कर में पड़ गया और कार्य पूरा होने से पूर्व ही चल बसा. वेबर और लिउमैन

---

१. Hisfory of Indian Literature by Winternitz, Pt. II

२. Bloomfield.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने उस संकलन में से कोई ५५ पृष्ठ नमूने के रूप में छपाए हैं.[1] इसके बाद जैन-ग्रन्थों के सूचीकारों में ग्यूरिनाट (Guerinot) का नाम आता है, जिसने अपना "जैन ग्रन्थ-सूची पर निबन्ध" १९०६ ई० में प्रकाशित कराया. इसी प्रकार जैन शिलालेखों पर भी अपना निबन्ध दो वर्ष बाद प्रकट किया. तदनन्तर ल्युडर्स (Luders) ने भी अपने ब्राह्मी-लेखों की सूची में जैन-पट्टावलि और परम्परा पर सम्यक् प्रकाश डाला है.[2]

जब जैन-साहित्य-संशोधन का प्रसंग आता है तो इस बात को भुलाया नहीं जा सकता कि जैन साहित्य के प्रति सर्व-प्रथम आकृष्ट करने का श्रेय जार्ज ब्यूह्लर को है. उसने बम्बई प्रेसीडेन्सी की सेवा में रहते हुए भारतीय, विशेषत: जैन साहित्य के उद्धार की दिशा में १७ वर्षों तक बहुत बड़ा काम किया है. इसके परिणाम-स्वरूप बहुत से ग्रन्थसंग्रहों के विवरण, अज्ञात ग्रन्थों के मूलपाठ, चूर्णिकायें आदि और अवचूरियाँ प्रकाश में आई और बहुत से विदेशी विद्वानों ने उन पर काम करके समीक्षात्मक निबन्ध लिखे और लिख रहे हैं. श्रीमती एस०स्टीवेन्सन नाम की महिला गुजरातमें ईसाई धर्म की प्रचारिका होकर आई थी. उन्होंने "The Heart of Jainism" नामक निबन्ध १९१५ में प्रकट किया और उसमें दिगम्बर शाखा की पूर्ण समीक्षा की. इससे पूर्व भी श्रीमती स्टीवेन्सन ने "आधुनिक जैन धर्म" पर अपनी टिप्पणी १९१० ई० में आक्सफॉर्ड से प्रकाशित कराई थी. ग्यूरिनॉट ने "जैनों के धर्म" नामक पुस्तक १९२६ में लिखी और उसमें प्रस्तुत तथ्यों पर विद्वज्जगत् में खूब चर्चा रही. इससे एक वर्ष पूर्व ग्लेसनॅप (Glasenapp) लिखित "Der Janismus, Eine Indische Erlosungureligion नामक पुस्तक सन् १९२५ ई० में प्रकाश में आ चुकी थी, जिसमें जैन और अन्य भारतीय धर्मों का तुलनात्मक समीक्षण किया गया है. इसी लेखक ने एक और पुस्तक लिखी है जिसमें जैन-साहित्य की प्रतिनिधि कृतियों पर मन्तव्य प्रकट किए गए हैं.[3]

बहुत समय तक तो भारतीय जैनों को इस बात का पूरा-पूरा पता ही नहीं चला अथवा बहुत कम पता चला कि उनके साहित्य पर विदेशों में कितना और क्या अनुसंधान हो रहा है. अथवा, अधिक से अधिक उन्हें केवल अंग्रेजी में लिखित पुस्तकों और निबन्धों का ही किसी अंश तक परिचय प्राप्त हो सका. जर्मन और अन्य पाश्चात्य भाषाओं में जो काम हुआ वह तो उनकी पहुँच के बाहर ही रहा. परिणाम यह हुआ कि पाश्चात्यों द्वारा किए हुए श्रम का विवरण प्राय: वहीं तक सीमित रहा. उदाहरणार्थ, जैकाबी द्वारा किए गए काम का केवल वही अंश हमारी जानकारी में आया जो अंग्रेजी में था और बहुत कुछ अपरिचित ही रहा. परन्तु, जो कुछ सामग्री भारत में अवगत हो सकी वही जैकोबी साहब को १९१४ ई० में "जैनदर्शनदिवाकर" की पदवी प्राप्त कराने में पर्याप्त सिद्ध हुई. प्राकृत साहित्य पर वैज्ञानिक ढंग से शोध करने वालों में प्रो० जैकाबी का नाम सबसे आगे रहेगा.

इसी प्रकार वर्त्तमान में जैन संशोधन के ख्यातनामा विद्वान् वाल्थर शुब्रिङ् ने भी "डाक्ट्रिन् आफ दी जैन्स" नामक पुस्तक लिखकर इस परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है.

इस लेख द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि भारतीय-संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए इन विदेशी विद्वानों ने सबसे प्रथम कदम उठाए और आगे आने वाले संशोधकों के लिए आधारभूमि तैयार की. यद्यपि इनके सभी कथन पूरी तरह से प्रमाणित नहीं हैं, फिर भी, शोध की जिस प्रणाली का सूत्रपात इन लोगों द्वारा हुआ है वह वैज्ञानिक और सुदृढ़ माना जा सकता है.

१. Indian Antiquary. P.23, 169
२. एपिग्राफिया एण्डिका भा० १०—परि०
३. Essai de Bibliographie Jaina, Paris, 1906.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org